गोलकनाथ, केशवानंद और मिनर्वा मिल्स का मामला

गोलकनाथ मामला

संविधान के अनुच्छेद 13 में यह व्यवस्था कर दी गई है कि संसद् द्वारा ऐसा कोई भी कानून नहीं बनाया जायेगा जिससे संविधान के भाग-3 में वर्णित मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता हो. परन्तु 1951 में, संविधान के लागू होने के एक वर्ष के अन्दर ही प्रथम संशोधन कर के एक नया अधिनियम पारित किया गया. इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 31 के अंतर्गत प्रत्याभूत (guaranteed) संपत्ति के अधिकार को सीमित कर दिया गया. इस संशोधन की संवैधानिकता पर **शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ** वाद में विचार किया गया. उच्चतम न्यायालय ने शंकरी प्रसाद मामले में निर्णय देते हुए स्वीकार किया कि संसद् मूल अधिकारों में भी संविधान के अन्य उपबंधों की भांति संशोधन कर सकता है. **सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य** वाद में भी उच्चतम न्यायालय अपने पूर्ववर्ती शंकरी प्रसाद वाले निर्णय पर दृढ़ रहा.

परन्तु 1967 ई. उच्चतम न्यायालय ने "गोलक नाथ बनाम पंजाब सरकार" विवाद में अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों को उलट दिया और यह निर्णय दिया कि संसद् अनुच्छेद 368 के अधीन मौलिक अधिकारों को समाप्त या सीमित करने की शक्ति नहीं रखता. यह निर्णय 11 न्यायाधीशों की पीठ ने दिया था. 6 न्यायाधीश बहुमत में थे और 5 अल्पमत में.

24वाँ संशोधन

गोलकनाथ मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की प्रतिक्रियास्वरूप संसद् ने संविधान का 24वाँ संशोधन अधिनियम, (1971) पारित कर निर्धारित किया कि अनुच्छेद 368 के अंतर्गत मूल अधिकारों में भी संशोधन किया जा सकता है.

25वाँ संशोधन

पुनः 25वें संशोधन अधिनयम, 1971 के अंतर्गत संपत्ति के अधिकार को सीमित करते हुए निर्धारित किया गया कि यदि 39 (ख) और 39 (ग) के तहत नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के उद्देश्य से कोई कानून बनाया जाता है तो उसे इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकता कि इससे अनु. 14, 19 और 31 में वर्णित अधिकारों का हनन होता है.

केशवानंद भारती मामला

1973 में केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य विवाद में यह विषय फिर से उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया. जिस न्यायपीठ ने इसे सुना उसमें 13 न्यायाधीश थे. बहुमत अर्थात् 7 न्यायाधीशों ने 24वें संविधान संशोधन को विधिमान्य ठहराते हुए "गोलकनाथ मामले" में दिए फैसले को उलट दिया किन्तु साथ ही एक नया सिद्धांत प्रतिपादित किया. न्यायालय ने यह कहा कि संसद् मूल अधिकारों वाले भाग में संशोधन करने के लिए उतनी ही सक्षम है जितनी कि संविधान के किसी अन्य भाग का. परन्तु संविधान का संशोधन करके संसद् संविधान की आधारभूत संरचना (जिसे आधारभूत लक्षण भी कहा गया है) को न तो संक्षिप्त कर सकती है, न समाप्त कर सकती है और न नष्ट कर सकती है. गोलकनाथ मामले के बाद किसी भी मूल अधिकार को न तो छीना जा सकता था और न ही नष्ट किया जा सकता था. केशवानंद मामले के बाद न्यायालय को यह विनिश्चय करना है कि कोई मूल अधिकार आधारभूत लक्षण है या नहीं. यदि वह आधारभूत लक्षण है तो उसे कदापि हटाया नहीं जा सकता.

42 वाँ संशोधन

न्यायपालिका ने जो आधारभूत लक्षण का सिद्धांत बनाया था उसे निरस्त (negate) करने के लिए 42वाँ संशोधन अधिनियम, 1976 पारित किया गया. इसके द्वारा अनु. 368 में खंड (4) अन्तःस्थापित किया गया. इस खंड का उद्देश्य न्यायिक पुनर्विलोकन (judicial review) की शक्ति को हटाना था. इस खंड में यह अधिनियमित किया गया कि संसद् की संविधान संशोधन की शक्ति असीमित है तथा संविधान संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है.

मिनर्वा मिल्स मामला

उच्चतम न्यायलय ने "मिनर्वा मिल्स" बनाम "भारत संध" वाद में यह निर्धारित किया कि अनु. 368 का खंड (4) विधिसम्मत नहीं (invalid) है क्योंकि यह न्यायिक पुनर्विलोकन को समाप्त करने के लिए पारित किया गया था. न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धांत संविधान का आधारभूत लक्षण है. अत एव 42वें संशोधन के उक्त प्रावधान को असंवैधानिक बताते हुए निर्णय दिया गया कि संसद् संविधान के मौलिक ढांचें को नहीं बदल सकता. "**वामन राव बनाम भारत संघ (1981)**" वाद में न्यायलय ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आधारभूत लक्षण का सिद्धांत 24-4-1973 को, अर्थात् केशवानंद भारती के निर्णय सुनाये जाने की तिथि, के बाद पारित होने वाले संविधान संशोधन अधिनियमों पर लागू होगा.

इन संशोधनों और विनिश्चयों का परिणाम यह हुआ कि –

1. मूल अधिकारों का संशोधन किया जा सकता है.
2. प्रत्येक मामले में न्यायालय यह विचार करेगा कि क्या मूल अधिकारों के संशोधन से संविधान के किसी आधारभूत लक्षण का निराकरण या विनाश या क्षय हो रहा है. यदि इसका उत्तर हाँ में है तो संशोधन उस विस्तार तक अविधिसंगत (invalid) होगा.
3. आधारभूत लक्षणों के आधार पर उन्हीं अधिनियमों को अविधिमान्य किया जा सकेगा जो 24-4-1973 के बाद पारित किये गए हैं.